वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 210
ISBN-978-93-82071-29-7

सामायिक विधि

–लेखिका –

जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी,
दो बार डी.लिट्. की मानद उपाधि से अलंकृत
परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि
श्री ज्ञानमती माताजी

परमपूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के 80वें जन्मजयंती वर्ष
सन् 2013-2014 (अमृत महोत्सव) के अन्तर्गत प्रकाशित)

-प्रकाशक-

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.
फोन नं.- (01233) 280184, 280994
Website : www.jambudweep.org, www.encyclopediaofjainism.com
E-mail : jambudweeptirth@gmail.com
Facebook : jaintirthjambudweep

छठा संस्करण	वीर नि. सं. 2540	मूल्य
1100 प्रतियाँ	पौष कृ. अमावस्या, 1 जनवरी 2014	12/-रु.

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएँ भी प्रकाशित होती रहती हैं।

–: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :–

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

–: मार्गदर्शन :–

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी
(पीएच.डी. की मानद उपाधि से अलंकृत)

–: निर्देशक एवं सम्पादक:–

कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी

–: प्रबंध सम्पादक :–

जीवन प्रकाश जैन

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

चतुर्थ संस्करण (सन् 2001)-2200 प्रतियाँ, पंचम संस्करण (सन् 2012)-1100 प्रतियाँ प्रकाशित

कम्पोजिंग - ज्ञानमती नेटवर्क
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

वीर शासन जयंती पर्व एवं चैत्यभक्ति का महत्त्व

-ब्र. कु. सारिका जैन (संघस्थ)

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो, जैन धर्मोस्तु मंगलम्।।

आज से २६१० वर्ष पूर्व भगवान महावीर स्वामी ने चैत्र सुदी तेरस के दिन कुण्डलपुर नगरी में जन्म लेकर पिता सिद्धार्थ एवं माता त्रिशला के जीवन को धन्य किया। तीस वर्ष की अवस्था में भगवान ने मगसिर सुदी दशमी को दीक्षा धारण कर ली पुनः १२ वर्ष बाद वैशाख सुदी दशमी को केवलज्ञान प्राप्त किया था। केवलज्ञान प्राप्त होते ही इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने विपुलाचल पर्वत पर समवसरण की रचना कर दी। समवसरण में बारह सभाओं के मध्य भगवान विराजमान थे। ६६ दिन तक भगवान की दिव्यध्वनि नहीं खिरने से सौधर्म इन्द्र को चिंता हुई और उन्होंने अपने अवधिज्ञान के द्वारा इन्द्रभूति नामक ब्राह्मण को समवसरण में उपस्थित किया। समवसरण में पहुँचकर इन्द्रभूति गौतम ने जैसे ही मानस्तंभ का दर्शन किया, उनका मान गलित हो गया और उन्हें सम्यग्दर्शन प्रगट हो गया, तब उन्होंने-

जयति भगवान हेमाम्भोजप्रचारविजृंभिता।
वमरमुकुटच्छायोद्गीर्णप्रभापरिचुम्बितौ।।
कलुषहृदयामानोद्भ्रान्तापरस्परवैरिणो।
विगतकलुषापादौ यस्यप्रपद्यविशश्वसुः।।

आदि बोलते हुए भगवान की स्तुति की, पुनः समवसरण में जैनेश्वरी दीक्षा लेकर प्रथम गणधर पद प्राप्त किया। इसी दिन भगवान की दिव्यध्वनि खिरी और यह दिन श्रावण कृष्णा एकम् का था, जिसे वीर शासन जयंती के नाम से जाना जाता है। इन गौतम स्वामी द्वारा बोली गई स्तुति चैत्यभक्ति के नाम से प्रसिद्ध है इस चैत्यभक्ति को साधुगण त्रिकाल सामयिक में पढ़ते हैं। सन् १९७७ में पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने इस चैत्यभक्ति का हिन्दी पद्यानुवाद किया। तब से लेकर आज तक लोग इसे बड़ी श्रद्धापूर्वक पढ़ते हैं।

बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी महाराज के प्रथम पट्टशिष्य आचार्य श्री वीरसागर वर्ष २०११-२०१२ के अन्तर्गत पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी की विशेष प्रेरणा है कि आप लोग दिन में कम से कम एक बार इस चैत्यभक्ति को पढ़कर सम्पूर्ण विधिवत् सामायिक अवश्य करें।

सामायिक प्रयोग विधि

त्रिकाल में विधिवत् देववंदना करना ही सामायिक है

त्रिसंध्यं वन्दने युंज्याच्चैत्यपंचगुरुस्तुती।
प्रियभक्ति वृहद्भक्तिष्वन्ते दोषविशुद्धये।।१।।

(अनगार धर्मामृत)

तीनों संध्यासंबंधी जिनवंदना में चैत्यभक्ति और पंचगुरुभक्ति तथा सभी वृहद्भक्तियों के अन्त में वंदना पाठ की हीनाधिकतारूप दोषों की विशुद्धि के लिए प्रियभक्ति (समाधिभक्ति) करना चाहिए।

इस देववंदना में छह प्रकार का कृतिकर्म भी होता है। यथा—

स्वाधीनता परीतिस्त्रयी निषद्या त्रिवारमावर्ताः।
द्वादश चत्वारि शिरांस्येव कृतिकर्म षोढेष्टम्।।२।।

तथा—आदाहीणं, पदाहीणं, तिक्खुत्तं, तिऊणदं, चदुस्सिरं, वारसावत्तं, चेदि।

(१) वंदना करने वाले की स्वाधीनता (२) तीन प्रदक्षिणा (३) तीन भक्तिसंबंधी तीन कायोत्सर्ग (४) तीन निषद्या-१. ईर्यापथ कायोत्सर्ग के अनन्तर बैठकर आलोचना करना और चैत्यभक्तिसंबंधी क्रिया-विज्ञापन करना, २. चैत्यभक्ति के अन्त में बैठकर आलोचना करना और पंचमहागुरुभक्ति संबंधी क्रिया-विज्ञापन करना, ३. पंचमहागुरुभक्ति के अंत में बैठकर आलोचना करना (५) चार शिरोनति (६) बारह आवर्त। यही सब आगे सामायिक विधि में आता है।

वंदना योग्य मुद्रा

मुद्रा के ४ भेद हैं—जिनमुद्रा, योगमुद्रा, वन्दनामुद्रा, मुक्ताशुक्तिमुद्रा। इन चारों मुद्राओं का लक्षण क्रम से कहते हैं।

जिन मुद्रा—दोनों पैरों में चार अंगुल प्रमाण अन्तर रखकर और दोनों भुजाओं को नीचे लटकाकर कायोत्सर्गरूप से खड़े होना सो जिनमुद्रा है।

योग मुद्रा—पद्मासन, पर्यंकासन और वीरासन इन तीनों आसनों की गोद में नाभि के समीप दोनों हाथों की हथेलियों को चित्त रखने को जिनेन्द्रदेव योग मुद्रा कहते हैं।

वन्दना मुद्रा—दोनों हाथों को मुकुलितकर और कुहनियों को उदर पर रखकर खड़े हुए पुरुष के वंदना मुद्रा होती है।

मुक्ताशुक्ति मुद्रा—दोनों हाथों की अंगुलियों को मिलाकर और दोनों कुहनियों को उदर पर रखकर खड़े हुए को आचार्य मुक्ताशुक्ति मुद्रा कहते हैं।

इस प्रकार सामायिक विधि में चैत्यभक्ति, पंचगुरुभक्ति पढ़ने का विधान मुनियों के आचारशास्त्र—अनगारधर्मामृत, चारित्रसार, धवला के वेदनाखण्ड आदि ग्रंथों में लिखा है। तथैव श्रावकों के लिए भी इसी तरह षट्प्राभृत, भावसंग्रह, वसुनंदिश्रावकाचार आदि ग्रंथों में लिखा है अतः यही विधि प्रामाणिक है।

देववंदना के लिए जिनमंदिर में पहुँचकर हाथ-पैर धोकर 'निःसहि' का तीन बार उच्चारण कर जिनेन्द्रदेव को नमस्कार करें। अनन्तर "दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भवतापहारि" इत्यादि स्तोत्र को पढ़ते हुए चैत्यालय की तीन प्रदक्षिणा देवें। पुनः 'निःसंगोऽहं जिनानां' इत्यादि दर्शनस्तोत्र पढ़कर यदि बैठकर सामायिक करना है, तो बैठकर अथवा खड़े होकर 'ईर्यापथ शुद्धि पाठ' से सामायिक शुरू करें।

सामायिक

(देववंदना)

ईर्यापथ शुद्धि

(खड़े होकर वंदनामुद्रा से यह पाठ पढ़ें)

—दोहा—

हे भगवन् ! ईर्यापथिक, दोष विशोधन हेतु।
प्रतिक्रमण विधि मैं करूँ, श्रद्धा भक्ति समेत।।१।।

—चौबोल छंद—

गुप्ति रहित हो षट्कायों की, मैं विराधना जो करता।
शीघ्र गमन प्रस्थान ठहरने, चलने में अरु भ्रमण किया।।२।।

प्राणीगण पर गमन, बीज पर गमन, हरित पर चला कहीं।
मल मूत्रादि नासिका मल कफ, थूक विकृति को तजा कहीं।।३।।

एकेन्द्रिय द्वीइन्द्रिय त्रय-इन्द्रिय चउइन्द्रिय पंचेंद्री।
जीवों को स्वस्थान गमन से, रोका या अन्यत्र कहीं।।४।।

रखा परस्पर पीड़ित कीना, एकत्रित कीना घाता।
ताप दिया या चूर्ण किया, कूटा मूर्च्छित कीना काटा।।५।।

ठहरे चलते फिरते को छिन्न-भिन्न विराधित किया प्रभो।
गुणहेतू प्रायश्चित हेतू, उन्हें विशोधन हेतु प्रभो।।६।।

जब तक भगवत् अर्हत् के, णवकार मंत्र का जाप्य करूँ।
तब तक पापक्रिया अरु दुश्चरित्र का बिल्कुल त्याग करूँ।।७।।

(नौ बार णमोकार मंत्र का जाप्य)

आलोचना

(गवासन से बैठकर वंदनामुद्रा से यह पाठ पढ़ें)

—दोहा —

ईर्यापथ से गमन में, मैंने किया प्रमाद।
एकेन्द्रिय आदिक सभी, जीवों का जो घात।।१।।

किया यदी चउ हाथप्रम, नहीं भूमि को देख।
गुरु भक्ती से पाप सब, हों मिथ्या मम देव!।।२।।

भगवन्! ईर्यापथ आलोचन, करना चाहूँ मैं रुचि से।
पूर्वोत्तर दक्षिण पश्चिम, चउदिस विदिशा में चलने से।।३।।

चउकर देख गमन भव्यों का, होता पर प्रमाद से मैं।
शीघ्र गमन से प्राण भूत अरु, जीव सत्त्व को दुःख दीने।।४।।

यदी किया उपघात कराया, अथवा अनुमति दी रुचि से।
श्रीजिनवर की कृपा दृष्टि से, सब दुष्कृत मिथ्या होवें।।५।।

नमोस्तु भगवन् ! देववंदनां करिष्यामि।

सभी भव्य की अर्थ सिद्धि के, कारण उत्तम सिद्धसमूह।
प्रशस्त दर्शन ज्ञान चरित के, प्रतिपादक मैं तुम्हें नमूँ।।१।।

सुरपति के शेखर से चुम्बित, पादपद्म अरुणित केशर।
तीन लोक के मंगल जिनवर, महावीर का करूँ नमन।।२।।

सभी जीव पर क्षमा करूँ मैं, सब मुझ पर भी क्षमा करो।
सभी प्राणियों से मैत्री हो, बैर किसी से कभी न हो।।३।।

राग बंध अरु प्रदोष हर्ष, दीन भाव उत्सुकता को।
भय अरु शोक रती अरती को, त्याग करूँ दुर्भावों को।।४।।

हा! दृष्कृत किये हा! दुश्चिते, हा! दुर्वचन कहे मैंने।
कर-कर पश्चाताप हृदय में, झुलस रहा हूँ मैं मन में।।५।।

द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव से, कृत अपराध विशोधन को।
निन्दा गर्हा से युत हो, प्रतिक्रमण करूँ मन-वच-तन सों।।६।।

सभी प्राणियों में समता हो, संयम हो शुभ भाव रहे।
आर्तरौद्र दुर्ध्यान त्याग हो, यही श्रेष्ठ सामायिक है।।७।।

भगवन् नमोस्तु! प्रसीदंतु प्रभुपादौ वंदिष्येऽहं एषोऽहं सर्वसावद्ययोगाद् विरतोऽस्मि।

अथ पौर्वाह्णिक[१] देववंदनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजा-वंदनास्तवसमेतं चैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पंचांग नमस्कार करें, खड़े होकर तीन आवर्त एक शिरोनति करके मुक्ताशुक्ति मुद्रा के द्वारा सामायिक दंडक पढ़ें।)

सामायिक दंडक

णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं।।

चत्तारि मंगलं-अरहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहु मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा-अरहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहु लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि-अरहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहु सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि।

ढाई द्वीप अरु दो समुद्र गत, पन्द्रह कर्म भूमियों में।
जो अर्हत भगवंत आदिकर, तीर्थंकर जिन जितने हैं।।१।।

तथा जिनोत्तम केवलज्ञानी, सिद्ध शुद्ध परि निर्वृतदेव।
पूज्य अंतकृत भवपारंगत, धर्माचार्य धर्मदेशक।।२।।

धर्म के नायक धर्मश्रेष्ठ, चतुरंग चक्रवर्ती श्रीमान्।
श्री देवाधिदेव अरु दर्शन-ज्ञान चरित गुण श्रेष्ठ महान।।३।।

करूँ वंदना मैं कृतिकर्म, विधि से ढाई द्वीप के देव।
सिद्ध चैत्य गुरुभक्ति पठन कर, नमूँ सदा बहुभक्ति समेत।।४।।

---

१. मध्यान्ह सामायिक के समय माध्यान्हिक बोले और सायंकाल की सामायिकके समय 'आपरान्हिक' बोलें।

भगवन् ! सामायिक करता हूँ, सब सावद्य योग तज कर।
यावज्जीवन वचन कायमन, त्रिकरण से न करूँ दुःखकर।।५।।

नहीं कराऊँ नहिं अनुमोदूँ, हे भगवन् ! अतिचारों को।
त्याग करूं निंदूं गर्हूं, अपने को मम आत्मा शुचि हो।।६।।

जब तक भगवत् अर्हद्देव की, करूँ उपासना हे जिनदेव।
तब तक पापकर्म दुश्चारित, का मैं त्याग करूँ स्वयमेव।।७।।

(तीन आवर्त एक शिरोनति करके २७ उच्छ्वास में **९ बार महामंत्र का जाप्य**, पुनः पंचांग नमस्कार-तीन आवर्त एक शिरोनति करके खड़े होकर मुक्ताशुक्ति मुद्रा द्वारा हाथ जोड़कर 'थोस्सामिस्तव' पढ़ें)-

थोस्सामि स्तवन

स्तवन करूँ जिनवर तीर्थंकर, केवलि अनंत जिन प्रभु का।
मनुज लोक से पूज्य कर्मरज, मल से रहित महात्मन् का।।
लोकोद्योतक धर्म तीर्थकर, श्रीजिन का मैं नमन करूँ।
जिन चउबीस अर्हंत तथा, केवलि-गण का गुणगान करूँ।।१।।

ऋषभ, अजित, संभव, अभिनन्दन, सुमतिनाथ का कर वंदन।
पद्मप्रभ जिन श्री सुपार्श्व प्रभु, चन्द्रप्रभ का करूँ नमन।।
सुविधि नामधर पुष्पदंत, शीतल श्रेयांस जिन सदा नमूँ।
वासुपूज्य जिन विमल अनंत, धर्मप्रभु शान्तिनाथ प्रणमूँ।।२।।

जिनवर कुन्थु अरह मल्लिप्रभु, मुनिसुव्रत नमि को ध्याऊँ।
अरिष्टनेमि प्रभु श्री पारस, वर्धमान पद शिर नाऊँ।।
इस विध संस्तुत विधुत रजोमल, जरा मरण से रहित जिनेश।
चौबीसों तीर्थंकर जिनवर, मुझ पर हों प्रसन्न परमेश।।३।।

कीर्तित वंदित महित हुए ये, लोकोत्तम जिन सिद्ध महान् ।
मुझको दें आरोग्यज्ञान अरु, बोधि समाधि सदा गुणखान।।
चन्द्र किरण से भी निर्मलतर, रवि से अधिक प्रभाभास्वर।
सागर सम गंभीर सिद्धगण, मुझको सिद्धी दें सुखकर।।४।।

(३ आवर्त १ शिरोनति करें)

चैत्यभक्ति

(खड़े होकर वंदनामुद्रा से)

जय हे भगवन् ! चरण कमल तव, कनक कमल पर करें विहार।
इन्द्रमुकुट की कांति प्रभा से, चुंबित शोभें अति सुखकार।।
जातविरोधी कलुषमना, क्रुध मान सहित जन्तूगण भी।
ऐसे तव पद का आश्रय ले, प्रेम भाव को धरें सभी।।१।।

जय हो श्रेयस्कर धर्मामृत, वृद्धिंगत महिमाशाली।
कुगति कुपथ से प्राणीगण को, निकालकर दे सुख भारी।।
नय को मुख्य गौण करने से, बहुत भेदयुत सुखदाता।
ऐसे जिनवचनामृतमय, हे धर्म! करो जग से रक्षा।।२।।

जय हो जैनी वाणी जग में, सप्तभंगमय गंगा है।
व्यय उत्पाद ध्रौव्ययुत द्रव्यों, के स्वभाव को प्रगट करे।।
अनुपम शिवसुख द्वार खोलती, अव्यय सुख को देती है।
विघ्न रहित अरु कर्म धूलि से, रहित मोक्ष को देती है।।३।।

अर्हत सिद्धाचार्य उपाध्याय, सर्व साधुगण सुरवंदित।
त्रिभुवन वंदित पंच परम गुरु, नमोऽस्तु तुमको मम संतत।।
मोहारि के घातक द्वयरज, आवरणों से रहित जिनेश।
विघ्न-रहस विरहित पूजा के, योग्य अर्हत को नमूँ हमेश।।४।।

क्षमादि उत्तम गुणगण साधक, सकल लोक हित हेतु महान्।
शुभ शिवधाम धरे ले जाकर, जिनवर धर्म नमूँ सुख खान।।
मिथ्याज्ञान तमोवृत जग में, ज्योतिर्मय अनुपम भास्कर।
अंगपूर्वमय विजयशील, जिनवचन नमूँ मैं शिर नत कर।।५।।

भवनवासि व्यन्तर ज्योतिष, वैमानिक में नरलोक में ये।
जिनभवनों की त्रिभुवन वंदित, जिनप्रतिमा को वंदूँ मैं।।
भुवनत्रय में जितने जिनगृह,भवविरहित तीर्थंकर के।
भवाग्नि शांति हेतु नमूँ मैं, त्रिभुवनपति से अर्चित ये।।६।।

इस विध प्रणुत पंचपरमेष्ठी, श्री जिनधर्म जिनागम को।
विमल चैत्य चैत्यालय वंदूँ, बुधजन इष्ट बोधि मम दो।।

द्युतिकर जिनगृह में अकृत्रिम, कृत्रिम अप्रमेय द्युतिमान।
नर सुर पूजित भुवनत्रय के, सब जिन बिंब नमूँ गुणखान।।७।।

द्युतिमंडल भासुर तनु शोभित, जिनवर प्रतिमा अप्रतिम हैं।
जग में वैभवहेतु उन्हें, वंदूँ अंजलिकर शिर नत मैं।।
आयुध विक्रिय भूषा विरहित, जिनगृह में प्रतिमा प्राकृत।
कांती से अनुपम हैं कल्मष, शांति हेतु मैं नमूँ सतत।।८।।

परम शांति से कषायमुक्ती, को कहती मनहर अभिरूप।
भव के अंतक जिन की प्रतिमा, प्रणमूँ मन विशुद्धि के हेतु।।
दुष्कृतपथ रोधक मम सिद्ध-भक्ति से हुआ पुण्य जो भी।
भव-भव में जिनधर्म हि में, दृढ़ भक्ति रहे फल मिले यही।।९।।

सब पदार्थवित् दर्श ज्ञान-सम्पत् युत अर्हत की प्रतिमा।
यथा बुद्धि मनशुद्धि हेतु, गुण कीर्तन करूँ अतुल महिमा।।
श्रीमद् भवनवासि के गृह में, भासुर जिन मूर्ति स्वयमेव।
परम सिद्धगति करें हमारी, वंदूँ उन्हें करूँ नित सेव।।१०।।

इस जग में जितनी प्रतिमा हैं, कृत्रिम अकृत्रिम सबको।
मैं वंदूँ शिव वैभवहेतु, सब जिन चैत्य जिनालय को।।
व्यंतर के विमान में जिनगृह, उनमें अकृत्रिम प्रतिमा।
संख्यातीत कही हैं वंदूँ, दोष नाश के हेतु सदा।।११।।

ज्योतिष देवों के विमान में, अद्भुत संपत्युत जिनगेह।
स्वयंभुवा प्रतिमा भी अगणित, उन्हें नमूँ निज वैभव हेतु।।
सुरपति के नत मुकुटमणि-प्रभ से अभिषेक हुआ जिनका।
वैमानिक सुर सेवित प्रतिमा, सिद्धि हेतु मैं नमूँ सदा।।१२।।

इस विध स्तुति पथातीत, अन्तर बाहिर श्रीयुत अर्हन्।
चैत्यों के संकीर्तन से मम, सर्वास्रव का हो रोधन।।
अर्हद्देव महानद उत्तम-तीर्थ अलौकिक हैं जग में।
त्रिभुवन भविजन तीर्थस्नान से, पापों का क्षालन करते।।१३।।

लोकालोक सुतत्त्व प्रकाशक, दिव्यज्ञान जल नित बहता।
शीलरु सद्व्रत विशाल निर्मल, दो तट से शोभित दिखता।।
शुक्लध्यानमय राजहंस, स्थिर राजत है इस नद में।
मंद्रघोष स्वाध्याय विविधगुण, समिति गुप्ति बालू चमके।।१४।।

क्षमादि हैं आवर्त सहस्रों, सर्वदयामय कुसुम खिले।
लता शोभती दुःसह परीषह, भंग तरंगित हैं लहरें।।
रहित कषाय फेन से राग-द्वेष आदि शैवाल रहित।
रहित मोह कीचड़ से मरणादिक जलचर मकरादि रहित।।१५।।

ऋषि प्रधान के मधुर स्तव हों, विविध पक्षि के शब्द सदृश।
विविध साधुगण तट हैं, आस्रव रोध निर्जरा जल निःसृत।।
गणधर चक्री इन्द्र आदि जो, भव्य प्रवर बहु पुरुष प्रधान।
कलिमल कलुष दूर करने हित, भक्ति से यहाँ किया स्नान।।१६।।

इस विध श्री अर्हंत महाप्रभु, महातीर्थ गणधर कहते।
भविजन पाप मैल क्षालन हित, इसमें अवगाहन करते।।
अति पावन यह तीर्थ अन्य से, अजेय अनुपम है गंभीर।
मैं स्नान हेतु उतरा हूँ, मम दुष्कृत मल करिये दूर।।१७।।

क्रोधाग्नि को जीत लिया नहिं, नेत्र कमल लालिमा प्रभो!
नहिं विकार उद्रेक अतः प्रभु, दृष्टि कटाक्ष रहित तुम हो।।
मद विषाद से रहित अतः, स्मित मुख सदा रहे भगवन् ।
कहता है यह मंदहास्य तव, अंतःकरण शुद्धि पूरण।।१८।।

रागोद्रेक रहित होने से, बिन आभूषण शोभित हो।
प्रकृति रूप निर्दोष तुम्हारा, प्रभु निर्वस्त्र मनोहर हो।।
हिंसा हिंस्य भावविरहित से, आयुध रहित सुनिर्भय हो।
विविध वेदना के क्षय से बिन-भोजन तृप्त सदा प्रभु हो।।१९।।

वृद्धि रहित नख केश प्रभू! रजमल स्पर्श न हो तन को।
विकसित कमल सुचंदन सम है, दिव्य सुगंधित देह विभो!

रवि शशि वज्र दिव्य लक्षण से, शोभित तव शुभरूप महान।
कोटि सूर्य से अधिक चमक, फिर भी दर्शक को प्रिय सुखदान।।२०।।

मोहराग से दूषित हितपथ-द्वेषीजन के सुन उपदेश।
कलुषमना जन हुए जगत में, शुचि होते वे तुमको देख।।
अतिशय युत तव मुख दर्शक, जन को अपने सन्मुख दिखता।
शरद् विमल शशि मंडल सम, तव आस्य चन्द्र है उदित हुआ।।२१।।

अमरेश्वर के नमस्कार से, मुकुट मणिप्रभ किरणों से।
चुम्बित चरण सरोरुह भगवन् ! तव शुभरूप मनोहर है।।
अन्य देव गुरु तीर्थ उपासक, सकल भुवन यह अन्ध समान।
उन सबको तव रूप पवित्र, करे अरु नेत्र करे अमलान।।२२।।

अंचलिका

(गवासन से बैठकर वंदना मुद्रा से)

भगवन् ! चैत्यभक्ति अरु कायोत्सर्ग किया उसमें जो दोष।
उनकी आलोचन करने को, इच्छुक हूँ धर मन सन्तोष।।
अधो मध्य अरु ऊर्ध्वलोक में, अकृत्रिम कृत्रिम जिनचैत्य।
जितने भी हैं त्रिभुवन के, चउविध सुर करें भक्ति से सेव।।१।।

भवनवासि व्यंतर ज्योतिष, वैमानिक सुर परिवार सहित।
दिव्य गंध सुम धूप चूर्ण से, दिव्य न्हवन करते नितप्रति।।
अर्चें पूजें वंदन करते, नमस्कार वे करें सतत।
मैं भी उन्हें यहीं पर अर्चूं, पूजूँ वदूँ नमूँ सतत।।२।।

दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, होवे बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।३।।

अथ पौर्वाह्णिक-देववंदनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं पंचमहागुरुभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पंचांग नमस्कार करके खड़े होकर ३ आवर्त एक शिरोनति करें, मुक्ताशुक्तिमुद्रा से पूर्ववत् 'सामायिक दंडक' पढ़कर ३ आवर्त १ शिरोनतिपूर्वक कायोत्सर्ग (९ जाप्य) करें पुनः साष्टांग नमस्कार करके खड़े होकर ३ आवर्त १ शिरोनति कर मुक्ताशुक्तिमुद्रा से 'थोस्सामि स्तवन' पढ़कर पुनरपि ३ आवर्त १ शिरोनति करें।)

पंचमहागुरु भक्ति

(खड़े होकर वंदना मुद्रा से)

सुरपति नरपति नागइन्द्र मिल, तीन छत्र धारें प्रभु पर।
पंचमहाकल्याणक सुख के, स्वामी मंगलमय जिनवर।।
अनंत दर्शन ज्ञान वीर्य सुख, चार चतुष्टय के धारी।
ऐसे श्री अर्हंत परमगुरु, हमें सदा मंगलकारी।।१।।

ध्यान अग्निमय बाण चलाकर, कर्मशत्रु को भस्म किये।
जन्म जरा अरु मरणरूप-त्रय नगर जला त्रिपुरारि हुए।।
प्राप्त किये शाश्वत शिवपुर को, नित्य निरंजन सिद्ध बने।
ऐसे सिद्धसमूह हमें नित, उत्तम ज्ञान प्रदान करें।।२।।

पंचाचारमयी पंचाग्नी में जो तप तपते रहते।
द्वादश अंगमयी श्रुतसागर, में नित अवगाहन करते।।
मुक्तिश्री के उत्तम वर हैं, ऐसे श्री आचार्य प्रवर।
महाशीलव्रत ज्ञान-ध्यानरत, देवें हमें मुक्ति सुखकर।।३।।

यह संसार भयंकर दुखकर, घोर महावन है विकराल।
दुखमय सिंह व्याघ्र अति तीक्षण, नख अरु डाढ़ सहित विकराल।।
ऐसे वन में मार्गभ्रष्ट, जीवों को मोक्षमार्ग दर्शक।
हित उपदेशी उपाध्याय गुरु, का मैं वंदन करूँ सतत।।४।।

उग्र-उग्र तप करें त्रयोदश-क्रिया चरित में सदा कुशल।
क्षीण शरीरी धर्मध्यान अरु, शुक्लध्यान में नित तत्पर।।
अतिशय तप लक्ष्मी के धारी, महासाधुगण इस जग में।
महा मोक्षपथगामी गुरुवर, हमको रत्नत्रय निधि दें।।५।।

इस संस्तव से जो जन पंच-परमगुरु का वंदन करते।
वे गुरुतर भव-लता काटकर, सिद्ध सौख्य संपत् लभते।।
कर्मेन्धन के पुंज जलाकर, जग में मान्य पुरुष बनते।
पूर्ण ज्ञानमय परमाह्लादक, स्वात्म सुधारस को चखते।।६।।

—दोहा —

अर्हत् सिद्धाचार्य अरु, पाठक साधु महान।
पंचपरमगुरु हों मुझे, भव - भव में सुखखान।।७।।

अंचलिका

(गवासन से बैठकर वंदना मुद्रा से)

—दोहा —

भगवन् पंचमहागुरु, भक्ति कायोत्सर्ग।
करके आलोचन विधि, करना चाहूँ सर्व।।१।।

अष्ट महाशुभ प्रातिहार्य, संयुत अर्हंत जिनेश्वर हैं।
अष्ट गुणान्वित ऊर्ध्वलोक, मस्तक पर सिद्ध विराज रहे।।
अठ प्रवचन माता संयुत हैं, श्री आचार्य प्रवर जग में।
आचारादिक श्रुतज्ञानामृत, उपदेशी पाठकगण हैं।।२।।

रत्नत्रय गुण पालन में रत, सर्वसाधु परमेष्ठी हैं।
नितप्रति अर्चूं पूजूँ वंदूँ, नमस्कार मैं करूँ उन्हें।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, होवे बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।३।।

अथ पौर्वाह्णिकदेववंदनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजा-वन्दनास्तवसमेतं चैत्य-पंचगुरुभक्ती कृत्वा तद्धीनाधिकदोष-विशुद्ध्यर्थं आत्मपवित्री-करणार्थं समाधिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् पंचांग नमस्कार, सामायिक दंडक, ९ जाप्य। थोस्सामि स्तवन करके समाधिभक्ति पढ़ें।)

समाधिभक्ति *(खड़े होकर वंदना मुद्रा से)*

प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः

शास्त्रों का अभ्यास जिनेश्वर, नमन सदा सज्जन संगति।
सच्चरित्र के गुण गाऊँ अरु, दोष कथन में मौन सतत।।
सबसे प्रिय हित वचन कहूँ, निज आत्मतत्त्व को नित भाऊँ।
यावत् मुक्ति मिले तावत्, भव-भव में इन सबको पाऊँ।।१।।

तव चरणांबुज मुझ मन में, मुझ मन तव लीन चरण युग में।
तावत् रहे जिनेश्वर यावत्, मोक्ष प्राप्ति नहिं हो जग में।।
अक्षर पद से हीन अर्थ, मात्रा से हीन कहा जो मैं।
हे श्रुत मातः! क्षमा करो सब, मम दुःखों का क्षय होवे।।२।।

अंचलिका

(गवासन से बैठकर वंदना मुद्रा से)

—दोहा —

भगवन् ! समाधि भक्ति अरु, करके कायोत्सर्ग।
चाहूँ आलोचन करन, दोष विशोधन हेतु।।१।।

रत्नत्रय स्वरूप परमात्मा, उसका ध्यान समाधि है।
नितप्रति उस समाधि को अर्चूं, पूजूँ वंदूँ नमूँ उसे।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, होवे बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।२।।

(अनन्तर यथावकाश आत्मध्यान, जाप्य आदि करें।)